इकाई द्वितीय खंड - हिन्दी कविता

गोस्वामी जी की काव्य दृष्टि

डॉ. सतीश चन्द्र पाठक

इस सृष्टि की यह विचित्रता है कि यहाँ के हर प्राणी की एक जीवन दृष्टि होती है. जीवन जीने की एक शैली होती है जिसके आधार पर वह अपने जीवनपथ को एक आयाम देता है। वैसे ही हर साहित्यकार की भी एक साहित्य या कला दृष्टि होती जिसे दृष्टि में रखते हुए अपनी कला को आकार देता है। अनेक बार यह दृष्टि इतनी सीमित और वैयक्तिक होती है कि उस पर सामान्य समीक्षक विचार करना भी उचित नहीं समझ(ते)। वहीं समाज के लिए अनुपयुक्त होने के कारण ऐसे सिद्धांतों का अस्तित्व शीघ्र ही विलीन हो जाता है। ~~गोस्वामी तुलसीदास~~ ठीक इसके विपरीत कुछ ऐसे सिद्धान्त निकलकर सामने आते (हैं) जिनकी विवेचना युगों तक होती रहती है। आचार्य भरत मुनि का रससिद्धान्त ऐसी साहित्यिक दृष्टि है जो आज भी प्रासंगिक होने के कारण विवेचनीय एवं व्याख्येय है।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के रूप में विश्व को ऐसा ग्रंथ रत्न प्रदान कि(या) जिससे संपूर्ण विश्व युगों-युगों तक प्रकाशित रहेगा। इस ग्रंथ के भिन्न-भिन्न स्थलों पर गोस्वामी जी की जीवनदृष्टि की छाप स्पष्टतः दिखलाई पड़ती है। समाज के विभिन्न आयामों के विवेचन-विश्लेषण के क्रम में उन्होंने अपने साहित्य एवं कलादृष्टि का भी परिचय दि(या)। यद्यपि यह परिचय अत्यन्त संक्षिप्त अथवा संकेतों में ही उपलब्ध है; क्योंकि यहाँ न तो (वह) प्रासंगिक है और न उसके विवेचन का अवकाश। वहाँ तो राम कथा की मार्मिकता और उ(सकी) विशदता पर ही उनकी दृष्टि है। उनके ग्रंथ का आरंभ यद्यपि मंगलाचरण से हुआ है -

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि

मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ। किन्तु विद्वानों का एक वर्ग इसमें … के लक्षणों का दर्शन करता है।

इस श्लोक में काव्य के समस्त अनिवार्य तत्वों का समाहार समझा [illegible] शब्द से वाक्य बनता है, वाक्य से अर्थ निक[illegible] पड़ता है- वर्ण से शब्द बनते हैं, और इन सभी उपकरणों से युक्त वर्णों के सम्यक नियोजन से छन्द बनते हैं। काव्य के लिए ये अनिवार्य है। निष्पत्ति होती है। इनमें से एक-एक उपकरण काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है- आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है- 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्।' रस युक्त वाक्य काव्य है। वैसे ही रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्। [illegible] शब्दों से काव्य का निर्माण होता है- रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्। [illegible] इन दोनों ही [illegible] राज जगन्नाथ)। गोस्वामी तुलसीदास जी के इस श्लोक में प्रायः इन दोनों ही [illegible] लक्षणों का समाहार दिखलाई पड़ता है। सच तो यह है कि श्लोक में सरस्वती [illegible] गणेश की वन्दना की गयी है किन्तु गोस्वामी जी ने बड़े ही कौशल के साथ इस में काव्य लक्षणों को इस तरह पिरो दिया है कि यह भान भी नहीं [illegible] कि इसमें काव्य लक्षण भी होंगे। इसी को कहते हैं- "अमित अरथ आखर [illegible] थोरे।" तुलसी काव्य की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि एक ही वाक्य में अनन्त अर्थ गुम्फित होते हैं।

काव्य का आविर्भाव कवि के हृदय में होता है किन्तु [illegible] कवि के हृदय में नहीं कर काव्यरसिक या काव्य मर्मज्ञ के हृदय में होती है। वैसे तो अपनी कविता तो सबको अच्छी ही लगती है-

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥

गोस्वामी जी स्पष्ट करते हैं कि अपनी कविता स्वयं को ही [illegible] यह कोई श्रेष्ठ स्थिति नहीं है। कविता का उत्स कहीं से फूटता है और उसकी शोभा अन्यत्र दिखलायी पड़ती है। कविता तो मणि के समान है जो पृथ्वी के गर्भ से निकल कर राजमुकुट या नारी की शोभा बनता है वैसे ही मोती भी हाथी के माथे पर वैसी शोभा नहीं पाता जैसी अन्यत्र शोभित होता है —

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥

जो रसमर्मज्ञ है जिसे कविता के आन्तरिक सौन्दर्य की समझ है वही काव्य की रमणीयता की अनुभूति कर सकता है-

तैसेहि सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥

गोस्वामीजी ने श्रेष्ठ काव्य की अपनी कसौटी बना रखी है। उनकी